प्रवचन नं. ४५ गाथा-११/१२ ता. २८-७-७८ शुक्रवार अषाढ वदी-९ सं.२५०४

समयसार ग्यारहवीं गाथा के भावार्थ का अंतिम भाग है। बात यह आ चुकी है पहली अब यहाँ दूसरी बात है। पहली बात तो यह आयी कि बहुत प्राणियों को अनादि से भेदरूप व्यवहार का पक्ष है। ***वस्तु की पर्याय यह उसका भेद है, राग भी एक इसका असद्भूत भेद है। पर्याय सद्भूत भेद है। इस भेद का पक्ष तो अनादि से है। भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि से है। सूक्ष्मबात है।***

और आपस में उपदेश भी इस जाति का कर रहे है। व्यवहार भेदरूप व्यवहार का, कि इससे कल्याण होगा। व्रत करो और तप करो तथा भक्ति, पूजा आदि। - ऐसा उपदेश भी परस्पर बहुत कर रहे है। तीसरा जिनवाणी में भी निश्चय स्वभाव के साथ, सहचर साथ में व्यवहार देखकर, इसका उपदेश व्यवहार का बहुत आया है। परंतु, इन तीनों का फल संसार है। आहाहा !

चार गति में भटकना उसका फल है। यहाँ तक आया था। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं। चैतन्य शुद्धद्रव्य ज्ञायकमूर्ति ध्रुव, उसका आश्रय कभी लिया नहीं। उसका पक्ष कभी आया नहीं। (श्रोता :- पक्ष का अर्थ ?) ***पक्ष का अर्थ आश्रय।*** व्यवहार का आश्रय लिया अनादि से, परंतु अंतर आत्मा ! ज्ञायक स्वभाव भाव ! जो ध्रुव भाव है, उसका आश्रय अवलम्बन पक्ष कभी किया नहीं। आहाहा !

और इसका उपदेश भी विरल है, उपदेश भी कहीं है कि (हे) भाई ! शुद्ध चैतनय् भगवान ! पूर्ण आनंद का ध्रुवकंद, उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता (है)। यह उपदेश विरल है, कहीं... कहीं... है - ऐसा कहते हैं। (श्रोता :- सोनगढ में है) आहाहाहा ! बहुत बदलाव हो गया (है)। इन व्यक्तियों को विचारों को ख्याल नहीं ! परंतु है तो दुःख का पंथ, परंतु इसतरह जानते (कि) हैं कि धर्म होगा - ऐसा मानते है। आहाहा !

आत्मा अखण्ड आनंद ध्रुव ! उसकी शरण उसको ध्येय बनाकर जो दशा होती है... वह बात विरले कहते हैं। आहाहा ! कहीं कहीं है। इसलिये, इस कारण, इसलिये अर्थात इसकारण कि शुद्धनय का पक्ष नहीं और इसका उपदेश भी कहीं विरल है, इसलिये जगत को सत्य मिलता नहीं। `इसलिये उपकारी श्री गुरु ने' आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य ! अमृतचन्द्राचार्य ! आहाहा ! मुनियों ने... दिगम्बर संत केवलज्ञान के पंथानुगामी, उन संतों ने शुद्धनय के ग्रहण का फल अर्थात कि द्रव्यस्वभाव जो

शुद्धचैतन्यध्रुव उसे ग्रहण करना, पकड़ना, उसका आश्रय लेना, उसका अवलंबन लेना, इसका फल मोक्ष जानकर... इसका फल मोक्ष है। व्यवहार के पक्ष का फल, जिनवाणी में कहा (जो) व्यवहार इसका फल संसार है। तब कहा क्यों ? कि निश्चय से स्व के आश्रय से हुई धर्मदशा के समय, सहचर साथ में राग के मंदता की दशा होती है, उसका ज्ञान कराने जिनवाणी में बहुत उपदेश आया है। परंतु फिर भी इसका फल तो संसार है। आहाहा ! निश्चय के ज्ञान सहित का व्यवहार। आहाहा !

चैतन्यप्रभु अतीन्द्रिय आनंद का रस कंद प्रभु आत्मा, उसका आश्रय लेकर जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि हो... उसे पूर्ण वीतरागता नहीं, इसलिये सहचर साथ में राग की मंदता का, विनय का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का - ऐसा भाव आये - ऐसा जिनवर ने बताया; परंतु यह जिनवर ने बताया इसका भी फल संसार है। आहाहा ! है न ?

और शुद्धनय के ग्रहण का फल, देखा ? उसमें पक्ष कहा था न ? इतना स्पष्ट किया पक्ष अर्थात ? विकल्परूप पक्ष नहीं। शुद्धनय के ग्रहण का फल अर्थात् त्रिकाली भगवान ज्ञायकभाव-ध्रुवभाव उसे ग्रहण करने का, उसे जानने का और उसका आश्रय लेने का, `ग्रहण करने का फल मोक्ष जानकर इसका उपदेश मुख्यता से किया है'। गौणरूप से व्यवहार है यह बताया है परंतु मुख्यरूप से इसका उपदेश है, इसका फल मोक्ष है, इसलिये। समझ में आया कुछ ?

व्यवहार बीच में आता है इसका ज्ञान कराया है और इसका उपदेश बहुत व्यवहार का ही है शास्त्रों में, परंतु इस व्यवहार का फल तो बंधन संसार है। इसलिये शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से... मुनियोंने मुख्यता से उसका उपदेश किया है। व्यवहार को गौण करके - अभाव करके ऐसी बात की थी परंतु गौण करके... है अवश्य व्यवहार (है)। इसका उपदेश भी है जिनवाणी में। यह तो सहचर राग की मंदता देखकर, व्यवहार जानकर इसे बताया है, कि इस भूमिका में ऐसे राग का व्यवहार होता (है), परंतु यह... राग के फल की अपेक्षा तो बंध और संसार है। आहाहाहाहा !

चाहे तो आत्मज्ञानी को राग आये, कि मुनि जो पंचमहाव्रत धारी को राग आये और तीन कषाय के अभाव (पूर्वक) आनंद का भाव तो उछल रहा है अंदर, इसके साथ महाव्रत का विकल्प आये, अट्ठाईस मूलगुण का, वीतराग के उपदेश में यह ज्ञान कराया है कि यह वहाँ होता है, परंतु इसका फल तो बंधन है। आहाहा ! (श्रोता :- भगवान ने कहा न... इसका फल यह बंधन है ?) - ऐसा है। (तब) यह कहा क्यों है ? कि निश्चय स्वभाव के आश्रित जो शांति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता,

उसकी अपूर्णता के कारण उसके साथ राग की मंदता का भाव होता है। इतना ज्ञान कराया है। आहाहा !

अभ्यास चाहिए भाई यह तो ! आहाहा ! समझ में आया ? प्रभु ! चैतन्यमूर्ति परम पवित्रता का पिण्ड प्रभु ! आहाहा ! अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रिय शांति, अतीन्द्रिय ईश्वरता का तो सागर भगवान है। उसका आश्रय करे और अवलम्बन करे तो उसे मोक्ष का कारण हो। ***ऐसे मोक्ष का कारण प्रगट होनेवाले को भी भूमिकानुसार व्यवहार, राग की मंदता का, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विनय का - ऐसा भाव आये, (तब) साथ में देखकर इसे कहा है... परंतु इसका फल तो संसार है।*** आहाहाहाहा ! ऐसी बातें कठिन बहुत जगत को (लगें) आहा !

देखो न ! अनंत काल से भटकता है देखो न, आहाहा ! यह नीम का फूल होता है, बोर फूल ढेर पड़ा है सामने कोई देखता नहीं। कुचल डालते मसल (देते) एक एक बोर फूल, फूल कहलाये यह नीम का... फूल एक राई जितने टुकड़े में तो असंख्य शरीर और अनंत जीव है। आहाहा ! गंभीर है (श्रोता :- जीवों की संख्या बहुत बड़ी है।) संख्या बड़ी, जीव बहुत है। वस्तु अनंत ! आहाहा ! इससे ***अनंतगुणे तो रजकण है। आहाहा ! जीव की संख्या है, अनंत... अनंत... अनंत... इससे अधिक रजकणों की संख्या अनंतगुणी है। आहाहा ! इसकी अपेक्षा तीनकाल के समय की संख्या अनंतगुणी है, इसकी अपेक्षा आकाश के प्रदेशों की संख्या अनंतगुणी है, इसकी अपेक्षा एक जीव के गुणों की संख्या अनंतगुणी है। आहाहा ! कितना ? आहाहा !***

और यह अनंतगुणो की एक समय की पर्यायों भी आकाश के प्रदेशों से अनंतगुणी है जितने गुण है उतनी ही पर्यायें है। आहाहा !

- ऐसा बड़ा समुद्र पड़ा है भगवान ! इसका जिसने आश्रय लिया इसके संसार का अंत आकर मोक्ष होता है। परंतु इसे छोड़कर अकेले व्यवहार का आश्रय ले, तब संसार और बंधन है और इसका आश्रय लेने पर अपूर्णता होने के कारण व्यवहार आये, इसका भी फल संसार है। आहाहा !

भव मिले। (श्रोता :- कहीं ऊंचा भव तो मिले न ?) भव अर्थात ऊंचा कहना किसे ? (श्रोता :- तीर्थंकर का) ***तीर्थंकर प्रकृति को जहर का वृक्ष कहा है। कठिन (बात !) आहाहा ! एक सौ अड़तालीस प्रकृति, समयसार में पीछे आता है यह जहर का वृक्ष है, अमृत का वृक्ष तो भगवान है अंदर।***

जैसे आम के वृक्ष में आम फले, आम पके, इसीप्रकार भगवान के वृक्ष में तो अमृत पकते हैं। - ऐसा वह अमृत का वृक्ष है और प्रकृति जो है एक सौ अड़तालीस

यह तो जहर का वृक्ष है - ऐसा कहा है। आहाहा ! विष वृक्ष - ऐसा कहा है। कलश में है।

यह तो शांति और धीरज का काम है, बापू ! आहाहा ! इसने अनंतकाल में वस्तु ही पूरी जो पूर्णानंद और पूर्ण शक्ति का संग्रहालय धाम... ऐसे ध्रुव धाम को इसने छुआ ही नहीं। ध्रुवधाम की इसने कीमत की ही नहीं। आहाहा ! त्रिकाली ध्रुव की इसे महिमा आई नहीं। त्रिकाली ध्रुव की आश्चर्यता इसे लगी नहीं। आहाहा !

व्यवहार की आश्चर्यता और महिमा और इसमें उलझ गया, संसारिक व्यवहार की यहाँ बात नहीं। संसार का जो व्यवहार धंधा व्यापारादि यह तो अकेला पाप (है) आहाहा ! यह तो जिनवाणी में कहा हुआ निश्चय सहित का व्यवहार भी (बंध का कारण), जिसे निश्चय नहीं, उसे जो व्यवहार है आहाहा ! उसे तो अकेला संसार का परिभ्रमण है। आहाहा !

`शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर इसका उपदेश प्रधानता से किया है' इसका अर्थ व्यवहार का उपदेश गौणरूप से है। यह मुख्यरूप से है। क्योंकि इसके आश्रय से मोक्ष होता है इसलिए ! आहाहा !

क्या कहा ? इसलिये कहते हैं कि `शुद्धनय भूतार्थ है' - त्रिकाली सत्य वह ही सत्यवत् है। आहाहा ! त्रिकाली सत्यानंदप्रभु ! सत्... आनंद... पूर्ण यही सत्यार्थ यह पदार्थ वस्तु है। पर्याय वस्तु है। रागवस्तु है। परंतु वास्तव में यह वस्तु त्रिकाली नहीं, और इसके आश्रय से कदाचित सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! यह तो अव्वलदोम की बातें है भाई !

शुद्धनय तो भूतार्थ है। भूत अर्थात विद्यमान पदार्थ त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक। जैसे पानी का प्रवाह - ऐसा बहता है। इसीप्रकार यह ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... - ऐसा ध्रुवरूप बहता है। आहाहा ! पानी का प्रवाह जो होता है। बाढ़ आती है न घोड़ा पूर, घोड़ा की ऊँचाई प्रमाण पानी आता (है) ऊपर बीस-पच्चीस इंच बरसात आ गई हो और चारों तरफ से नदी-नालों का पानी एकत्र हो... इतना इतना पानी का दल चला आता इस प्रकार, यहाँ सूखी जमीन हो, ऊपर से बाढ़ चली आती (है) हमने तो गाम में देखा है न ? उमराला! बड़ी नदी है वहाँ, कुछ बरसात न हो धूल उड़ती हो नदी में, वहाँ ऊपर से तेज बाढ़ आती थी। वृद्ध आवाज दे लड़कों को... लड़कों बाहर निकल जाओ बाहर, पानी आता है घोडापूर (बड़ा पानी का दल) आता है ऊपर से वहाँ... बरसात की बूंद भी न हो, परंतु ऊपर (गाँवों में) बरसात आयी हों बरसात समझे पानी, पानी का दल इतना इतना ऊँचा हो, ऊँचा दल चला आये। आहाहा ! यदि जल्दी न

करें तो इसमें लड़के बह जायें। यह इस प्रकार दल जाता है। यह भगवान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... यह - ऐसा जाता है। आहाहा ! अरे ऐसी बातें।

इस देह में प्रभु विराजते हैं। एक समय की पर्याय बिना की जो वस्तु है, यह ध्रुव है, अभेद है सामान्य है, एकरूप है, सादृश्य स्वरूपी है, पूर्णस्वभावी है, यह इसी न इसीप्रकार ध्रुव भूतकाल में रहा है और भविष्य में रहेगा यह दूसरी बात, परंतु यह तो ध्रुव वर्तमान ही ध्रुव है, आहाहाहा ! इस ध्रुव वस्तु का अवलम्बन लेकर मुख्यता से इसका उपदेश करने का कारण यह भूतार्थ है, विद्यमान पदार्थ है। त्रिकाली सत् ध्रुव वस्तु है। यह सत्य है। आहाहा ! इसकी अपेक्षा से पर्याय जो अवस्था है इसे गौण करके असत्यार्थ कहने में आयी है। पर्याय 'है', नहीं - ऐसा नहीं।

इसे मुख्य कहकर सत्यार्थ भूतार्थ है इसका आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि हो सकते हो। देखा ! अभी तो पहला सम्यग्दर्शन, धरम की पहली सीढ़ी... आहाहा ! त्रिकाली ध्रुव... सरल भाषा में तो बहन की भाषा यही थी। उसमें आता है पियूष में है, आध्यात्म पियूष में ऊपर शब्द है। बताया था मोहनलालजी ! 'जागता जीव विद्यमान है' ऊपर है। यह तो है परंतु यह तो उसमें अध्यात्म पियूष है न इसमें है इसमें शीर्षक में पढ़ा था परंतु ('जागृत जीव विद्यमान है') (जागता जीव खड़ा है) अर्थात ?

जागता अर्थात ज्ञायक जीव... ज्ञायक जीव... ज्ञायक यह खड़ा है अर्थात यों का यों ध्रुव है न ? यह सरल गुजराती भाषा। आहाहा ! ध्रुव है और ज्यों की त्यों विद्यमान एक वस्तु पूरी है वह ध्रुव है। इसलिये यह ध्रुव है वह विद्यमान उसमें बदलाव होता नहीं, इसमें पर्याय भी होती नहीं, ऐसे ध्रुव में पर्याय भी नहीं। आहाहा ! दशा है और पर्याय जो है वह तो हल चलवाली, परिणतिवाली, पलटनेवाली वस्तु जो है यह तो हलचल बिना की ध्रुव... इसका आश्रय करने से... है न ? सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है। आहाहाहाहा ! - ऐसा है। उसे जाने बिना...।

जागतो ज्ञायकभाव-ध्रुवभाव-सामान्य स्वभाव भाव त्रिकाल, इसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है, आहाहा ! पर्याय में राग की मन्दता आदि में मग्न है, तब तक आत्मा का ज्ञान श्रद्धान (रूप) निश्चय सम्यग्दर्शन हो सकता नहीं। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प जो है मंदराग, इसमें जो मग्न है, व्यवहार में मग्न है, तब तक उसे सत्यदर्शन परमतत्व स्वरूप का सत्यदर्शन प्रतीति उसे होती नहीं। आहाहाहा !

कहो समझ में आता है कि नहीं कुछ ? दिनेश भाई ! समझ में आता है कि नहीं यह ? कल पूंछा था भाई का नाम क्या है ? कि दिनेश भाई ! जवाहर

भाई ! आहा ! ऐसी वस्तु बापा मिलना मुश्किल है। कहा ना इसका उपदेश ही कहीं विरल है। आहाहा ! गांव गांव में यह व्यवहार का उपदेश, व्यवहार का उपदेश और 'व्यवहार में जहाँतक मग्न है, तब तक उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं' आहाहा ! तब तक उसे धर्म की शुरूआत होती नहीं, वृद्धि होना, स्थिर होना और बढ़ने की बात तो बाद में, आहाहा !

धरम टिके और धर्म बढ़े यह तो बाद में, परंतु प्रथम जो व्यवहार में मग्न है उसे निश्चयसम्यग्दर्शन, धर्म की शुरूआत ही होती नहीं। आहाहाहा !

(श्रोता :- ***व्यवहार करते-करते निश्चय होता ? बिलकुल बात ही झूठी है यह तो... व्यवहार की रुचि छोड़कर और त्रिकाली की रुचि करे और अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन होता है।*** आहाहा ! इसीलिये तो कहा 'जबतक इसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है' आहाहा ! उसकी बुद्धि ही वर्तमान पर्याय और राग ऊपर ही है। इसमें यह मग्न है बस। अंदर वस्तु ध्रुव चिदानंद भगवान है, उसकी तरफ इसकी नजर ही नहीं उसका इसे आश्रय नहीं, इसका इसे अवलम्बन नहीं उसकी इसे महिमा नहीं। व्यवहार की क्रिया करे तो बस इसमें, ओहोहो ! रस छोड़ा, इसने इतने रस छोड़े, और अकेला बाजरा का एक खाखरा ही खाता है, दूसरा नहीं और अमुक। अब इसमें भी क्या हुआ ?

(श्रोता :- आप तो कहते हो खा सकता है न ?) खा सकता है यह बात नहीं, परंतु खाने का इसका भाव... इतना खाना है हमको, बात करते थे वे वहाँ कुरावड़ में, कम खाना, कम करना ऐसी क्रिया करते-करते समकित होगा... आहाहा ! छुल्लक हुआ इसके पूर्व यहाँ आ चुका था, विद्यार्थी अवस्था में फिर बोलता था - ऐसा कि महराज मैं तो छात्र हूँ, यदि छात्र हो परंतु छात्र है तो बोलते तो हो तुम - ऐसा... तुम्हारे साथ इसप्रकार हमें बात किस प्रकार करना ? ऐसी क्रिया करे। परिषह सहन करे, उपसर्ग आये, सहन करे, ऐसी क्रिया करे उसे सम्यग्दर्शन हो, फिर। अरे ! धूल में न हो सुनो न। आहाहा !

यह व्यवहार में मग्न है तब तक निश्चय सत्य के दर्शन एवं सम्यग्दर्शन उसे होता नहीं। आहाहा ! व्यवहार के विकल्प और पर्याय की दृष्टि में भगवान पूर्णानंद का नाथ उसे दिखता नहीं। आहाहा ! व्यवहार में मग्न है, यह व्यवहार, संसार के व्यवहार की बात नहीं, हसमुख भाई ! तुम्हारा धंधा और यह पाप इसकी बात नहीं यह। व्यवहार अर्थात यहाँ दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, अनशन, उनोदर, कायक्लेश, रस-परित्याग विनय... विनय... विनय... देव-गुरु-शास्त्र का विनय।

(श्रोता :- विनय तो धर्म का मूल है - ऐसा कहा है) यह विनय कौन सी ?

स्वभाव के भान सहित की, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की विनय यह व्यवहार में ऊँची कहलाती है। निश्चय से तो अपनी विनय है। पूर्णानंद के नाथ की विनय तो तभी कहलाये पूर्ण आनंद स्वरूप है - ऐसा उसके प्रतीति में स्वीकार में आये तब उसने आत्मा का विनय किया - ऐसा कहलाये। और पूर्ण है (जो) उसे अपूर्ण और रागवाला माने, आहा ! तब तक उसने आत्मा की अविनय और अनादर और असातना की। ऐसी बात हैं प्रभु ! मार्ग क्या हो भाई !

इस ध्रुव त्रिकाली को जाने बिना, जहाँ तक जीव व्यवहार में मग्न है। आहाहाहा ! अब तो यही बहुत कहते हैं कि व्यवहार करो, करते-करते निश्चय होगा। आहाहा ! जहर पियो, पीते पीते अमृत की डकार आयेगी, यह तो - ऐसा हुआ ? आहा ! लहसन खाते खाते कस्तूरी की डकार आयेगी - ऐसा है यह। आहाहा !

इसे जाने बिना जबतक यह जीव - ऐसा क्यों कहा ? कि इसे कर्म का जोर है इसलिये यह मग्न है - ऐसा नहीं यह अपने उल्टे पुरुषार्थ से व्यवहार में मग्न है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा कि दर्शनमोह का जोर है इसे, अतः व्यवहार में मग्न है। दर्शनमोह कर्म है इसके साथ तुम्हें क्या काम है तुम्हें। आहाहा !

तुम्हारा पूर्ण स्वरूप भगवान चैतन्य ! चैतन्यभगवान प्रभु ! पूर्णानंद प्रभु, इसका आश्रय न करके इसका आदर न करके, पामर जो पर्याय एवं राग, इसका आदर किया, आहाहा ! - ऐसा व्यवहार में मग्न (जीव) को सच्चा सत्यदर्शन समकित होता नहीं आहाहा ! समझ में आया ?

और इसका दुःख मिटता नहीं। आहाहा ! तब तक आत्मा का ज्ञान श्रद्धान निश्चय अर्थात क्या कहा ? व्यवहार में मग्न है तब तक इसे सच्चा समकित होता नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तब तक आत्मा का ज्ञान और श्रद्धानरूप निश्चय समकित, आत्मा का ज्ञान और आत्मा की श्रद्धा (बिना), व्यवहार में मग्न है तब तक निश्चय आत्मा का ज्ञान और श्रद्धान उसे होता नहीं।

यहाँ - ऐसा आशय जानना लो, ग्यारवीं गाथा बहुत दिन चली, कितने दिन हुये। (श्रोता : ग्यारह) ग्यारह ! आहाहा ! यह तो मूल गाथा है। जैनदर्शन का प्राण है यह गाथा आहाहा ! समझ में आया ?

तब यहाँ व्यवहार का निषेध किया और व्यवहार नहीं - ऐसा कहा, गौण अपेक्षा तो व्यवहार है कि नहीं कहीं ? कि नहीं ही ! तो सुन। यह।

गाथा - १२

अथ च केषाञ्चित्कदाचित्सोऽपि प्रयोजनवान्। यत :-

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारेदसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।

शुद्धः शुद्धादेशो ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभि।
व्यवहारदेशिताः पुनर्ये त्वपरमे स्थिता भावे।।१२।।

अब, `यह व्यवहारनय भी किसी किसीको किसी काल प्रयोजनवान है, सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है; इसलिये उसका उपदेश है' यह कहते हैं:-

देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभावमें, व्यवहारसे उपदिष्ट है।।१२।।

गाथार्थ :- [परमभावदर्शिभिः] जो शुद्धनय तक पहूँचकर श्रद्धावान हुए तथा पूर्ण ज्ञानचारित्रवान हो गये उन्हें तो [शुद्धादेशः] शुद्ध (आत्मा) का उपदेश (आज्ञा) करनेवाला [शुद्धः] शुद्धनय [ज्ञातव्यः] जाननेयोग्य है; [पुनः] और [ये तु] जो जीव [अपरमे भावे] अपरमभावमें - अर्थात् श्रद्धा तथा ज्ञानचारित्रके पूर्णभाव को नहीं पहूँच सके हैं, साधक अवस्था में ही- [स्थिताः] स्थित हैं वे [व्यवहारदेशिताः] व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं।

टीका :- जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुये शुद्ध स्वर्ण के समान (वस्तु के) उत्कृष्ट भाव का अनुभव करते हैं उन्हें प्रथम, द्वितीय आदि पाकों की परंपरा से पच्यमान (पकाये जाते हुये) अशुद्ध स्वर्ण के समान जो अनुत्कृष्ट मध्यम भाव हैं उनका अनुभव नहीं होता; इसलिये, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने अचलित अखण्ड एकस्वभावरूप एक भाव प्रगट किया है - ऐसा शुद्धनय ही, सबसे ऊपर की एक प्रतिवर्णिका (स्वर्ण-वर्ण) समान होने से, जानने में आता हुआ प्रयोजनवान है। परंतु जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों (तावों) की परंपरा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण के समान जो (वस्तु का) अनुत्कृष्ट मध्यमभाव का अनुभव करते हैं उन्हें अंतिम

ताव से उतरे हुये शुद्ध स्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता; इसलिये, अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने भिन्न-भिन्न एक एक भावस्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं - ऐसा व्यवहारनय, विचित्र अनेक वर्णमाला के समान होने से, जानने में आता (ज्ञात होता) हुआ उसकाल प्रयोजनवान है। क्योंकि तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है। (जिससे तिरा जाये वह तीर्थ है; - ऐसा व्यवहार धर्म है और पार होना व्यवहारधर्म का फल है; अथवा अपने स्वरूप को प्राप्त करना तीर्थफल है।) अन्यत्र भी कहा है कि :-

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! यदि तुम जिनमत का प्रवर्तना करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय-दोनों नयों को मत छोड़ो; क्योंकि व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ-व्यवहारमार्ग का नाश हो जायगा और निश्चयनय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा।

भावार्थ :- लोक में सोने के सोलह वान (ताव) प्रसिद्ध हैं पन्द्रहवें वान तक उसमें चूरी आदि परसंयोग की कालिमा रहती है, इसलिये तबतक वह अशुद्ध कहलाता है; और ताव देते-देते जब अंतिम ताव से उतरता है तब वह सोलहवान या सौटंची शुद्ध सोना कहलाता है। जिन्हें सोलहवानवाले सोने का ज्ञान, श्रद्धान तथा प्राप्ति हुई है उन्हें पन्द्रह-वान तक का सोना कोई प्रयोजनवान नहीं होता, और जिन्हें सोलह-वानवाले शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई है उन्हें तबतक पन्द्रह-वान तक का सोना भी प्रयोजनवान है। इसीप्रकार यह जीव नामक पदार्थ है, जो कि पुद्गल के संयोग से अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। उसका, समस्त परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकत्वमात्र का ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरणरूप प्राप्ति - यह तीनों जिसे हो गये हैं उसे पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (किसी मतबल का) नहीं है; किन्तु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है उतना यथापदवी प्रयोजनवान है। जहाँ तक यथार्थ ज्ञानश्रद्धान की प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई हो वहाँ तक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है ऐसे जिनवचनों को सुनना, धारण करना तथा जिनवचनों को कहनेवाले श्री जिन-गुरु की भक्ति, जिनबिंब के दर्शन इत्यादि व्यवहारमार्ग में प्रवृत्त होना प्रयोजनवान है; और जिन्हें श्रद्धान-ज्ञान तो हुआ है किन्तु साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई उन्हें पूर्वकथित कार्य, परद्रव्य का आलंबन छोड़नेरूप अणुव्रत-महाव्रत का ग्रहण, समिति, गुप्ति, और पंच परमेष्ठी का ध्यानरूप प्रवर्तन तथा उसीप्रकार प्रवर्तन करनेवालों की संगति एवं विशेष जानने के लिये शास्त्रों का अभ्यास करना इत्यादि व्यवहारमार्ग में स्वयं प्रवर्तन करना और दूसरों को प्रवर्तन कराना - ऐसे व्यवहारनय का उपदेश अंगीकार करना

प्रयोजनवान है। *व्यवहारनय को कथंचित् असत्यार्थ कहा गया है; किन्तु यदि कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर छोड़ दे तो वह शुभोपयोगरूप व्यवहार को ही छोड़ देगा और उसे शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति तो नहीं हुई है, इसलिये उल्टा अशुभोपयोग में ही आकर, भ्रष्ट होकर, चाहे जैसी स्वेच्छारूप प्रवृत्ति करेगा तो वह नरकादि गति तथा परंपरा से निगोद को प्राप्त होकर संसार में ही भ्रमण करेगा। इसलिये शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्ध आत्मा है उसकी प्राप्ति जबतक न हो तबतक व्यवहार भी प्रयोजनवान है - ऐसा स्याद्वादमत में श्रीगुरुओं का उपदेश है।

गाथा - ११, १२ पर प्रवचन

अब यह व्यवहारनय भी किसी किसी को किसी समय प्रयोजनवान है अर्थात? `अथ च केषकेञ्चित्सोऽपि प्रयोजनवान यतः।' है न संस्कृत में यहाँ, किसी को कभी, किसी को कभी इसप्रकार। किसी किसी को और किसी समय जहाँ तक व्यवहार इसे होता है, निश्चय सहित व्यवहार होता है। आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ है; और पूर्ण नहीं अतः राग की मंदता का व्यवहार होता है, इसलिये किसी को, किसी किसी को अर्थात इस जीव को और किसी समय अर्थात जब तक निश्चयसहित व्यवहार होता है वहाँ तक। प्रयोजनवान अर्थात जाना हुआ प्रयोजनवान। इस अर्थ में बड़ा विरोध करते हैं। किसी किसी को किसी किसी समय प्रयोजनवान है इसका अर्थ संस्कृत टीका में जाना हुआ उस समय प्रयोजनवान है, आदरणीय नहीं। आहाहा !

स्वरूप की दृष्टि हुई है, ज्ञानचारित्रादि हुये और इसके साथ राग की मंदता का (एवं) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, व्रत का विकल्प होता है, इस समय जितना राग है और जितनी थोड़ी शुद्धता है और अशुद्धता है, उसको उससमय में उतना उसप्रकार से जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा !

जाना हुआ प्रयोजनवान है, इसमें बड़ा विवाद है।

सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं, अर्थात कि व्यवहार नहीं ही... - ऐसा नहीं।

***व्यवहार के उपदेश से - ऐसा नहीं समझना कि आत्मा परद्रव्य की क्रिया कर सकता है, परंतु - ऐसा समझना कि व्यवहारोपदिष्ट शुभभावोंको आत्मा व्यवहारसे कर सकता है, पुनश्च इस उपदेश से - ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि आत्मा शुभभाव करने से शुद्धता को प्राप्त होता है, परंतु - ऐसा समझना कि साधक दशा में भूमिकानुसार शुभभाव आये बिना नहीं रहते।**

जबतक वीतराग दशा न हो, तब तक ज्ञानी को, मुनियों को, सम्यग्दृष्टि को भी अंतर के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान होने पर भी, राग की मंदता का भाव उसे होता है। समझ में आया ? सर्वथा निषेध... व्यवहार नहीं है - ऐसा कहकर व्यवहार से निश्चय हो ऐसी बात नहीं। `निषेध करने लायक नहीं' अर्थात व्यवहार का निषेध (नहीं) किया अर्थात व्यवहार से भी लाभ हो, यह बात यहाँ नहीं आहाहा !

सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं, कथंचित निषेध अर्थात ? कि स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा निषेध करने लायक है परंतु (वह) वस्तु ही नहीं है - ऐसा नहीं। आहाहा ! मुनियों को भी सच्चे संतों को भी बीच में व्यवहार आता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि (आता है) इसलिये नहीं आता, इसप्रकार निषेध करने लायक नहीं, इसीप्रकार आता है अतः लाभदायक है - ऐसा (भी) नहीं। आहाहा !

इसमें कितना सीखना इसमें ? आहाहा ! (श्रोता :- थोड़े शब्द सीखना) यह तो बहुत कम शब्दों में आता है। सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं अर्थात ? कथंचित निषेध, अर्थात ? निश्चय की अपेक्षा व्यवहार निषेध करने लायक है। परंतु व्यवहार, व्यवहार अपेक्षा वहाँ आता है तब होता है, परंतु वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, परंतु गाथा के अर्थ में - ऐसा आयेगा अतः सभी लोग किंकतर्व्य विमूढ हो गये, साहूजी ने प्रश्न किया था दिल्ली (में) यह गाथा आयेगी इसकी।

गाथा - १२

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।
देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभावमें, व्यवहारसे उपदिष्ट है।।१२।।

यह व्यवहार का उपदेश है न, इसके कितने ही अर्थ अभी चलते हैं। अभी एक बड़ा लेख उसमें लिखा है। दक्षिण देशमें से कोई है, देखो ! व्यवहार का उपदेश करना, व्यवहार का उपदेश करना। `अपर में ट्ठिदा भावे' अर्थात जहाँ तक चौथा, पांचमा, छठवां है तब तक उसे व्यवहार का उपदेश करना... ऐसी बड़ी व्याख्या की है अरे, किसीने। आहाहा ! - ऐसा नहीं। यह दूसरी तरह है देखो ! - ऐसा कहना है।

गाथार्थ :- जो शुद्धनयतक पहूँचकर श्रद्धावान हुए। पूर्णज्ञान चारित्रवान हो गये

अर्थात निर्विकल्पता में स्थित है, निर्विकल्प दशा होगई अथवा पूर्णदशा हो गई, शुद्धनय तक पहुंचकर केवलज्ञान हुआ तब शुद्धनय पूर्ण हो जाना। ***केवलज्ञान हो तब शुद्धनय की पूर्णता हो जाना... यह आस्रव अधिकार में है। यह आस्रव अधिकार में है, केवलज्ञान हो तब शुद्धनय पूर्ण हुआ, अन्यथा तो शुद्धनय तो ध्रुव का आश्रय वह है। परंतु आश्रय लेना बंद हुआ जब, तब शुद्धनय पूर्ण हुआ - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! बहुत फर्क है।***

जो शुद्धनयतक पहुंचा जो शुद्धनय तक पहुंचा अर्थात सर्वज्ञ हुये और दूसरी अपेक्षासे निर्विकल्प ध्यान में गये, वह श्रद्धावान हुये (तथा) पूर्णज्ञान-चारित्रवंत हो गये उसको तो शुद्ध का उपदेश करनेवाले शुद्धनय जानने योग्य है। उसको अब शुद्धनय जानने योग्य है - ऐसा कहते हैं। जानने योग्य अर्थात उन्हें अब शुद्धनय का विषय (आश्रय करना) रहा नहीं। पूर्ण अखण्ड आनंद हो गया। आहाहा !

वह बड़ा झगड़ा (इस) गाथा में... स्थानकवासीमें से प्रथम झगड़ा आया था। वह दरियापुरी नहीं ? वह नटु नटु दरियापुरी, बहुत समय पहले दरियापुरी नहीं ? वढ़वान (का) नटु के पिताजी का नाम क्या ? हाँ ? कपूरभाई, कपूरभाई संवत चौरानवें में यहाँ स्वाध्याय मंदिरमें आये थे। कपूरभाईका लड़का नटु था, पहले यह पहले देखो ! यह बारमी गाथा में... स्थानकवासी था। स्थानकवासी को बारमी गाथा और यह समयसार है कहाँ ? फिर भी सभी इसका आधार ले। श्वेताम्बरों में भी आधार लेते है, दिगम्बर में भी एकांत पक्षवाला है, यह इसका आधार लेते हैं। देखो ! व्यवहार, व्यवहार का उपदेश करना... व्यवहार का उपदेश करना, किसको ? कि जो निचली दशा में, केवलज्ञान नहीं हुआ ऐसे जीवों को व्यवहार का ही उपदेश करना।

ऐसा नहीं... अर्थफेर बड़ा है। धीरे से समझना चाहिए। जिसको अंतर के अनुभव में पूरण दशा हो गई, ***उसे तो शुद्ध का उपदेश करनेवाला शुद्धनय, अर्थात तब पूर्णदशा हो गई अर्थात जानने योग्य (पूर्ण) हो गया बस। उसे अब कहीं आदर करने लायक कि शुद्धनय आश्रय करने लायक है - ऐसा रहा नहीं।***

पुनश्च जो जीव अपरमभाव अर्थात कि श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के पूर्णभाव को पहुंच सकते नहीं, और साधक अवस्था में ही स्थित है, उसकी पर्याय में अपूर्ण शुद्ध है, रागादिक है। इसलिये व्यवहार द्वारा (कहा) अर्थात कि उससमय वह जानने लायक है। व्यवहार का उपदेश करने के लिये उस समय वह जानने लायक है। यह टीका में आयेगा। यह तो शब्दों के पद की रचना में `ववहारदेसिदा' शब्द आ चुका है। परंतु उसका भाव... तब वह जहाँ तक पूर्ण केवली हुआ नहीं उसे स्वद्रव्य के आश्रय

से दर्शनज्ञान, चारित्र हुआ है, परंतु पर्याय में अभी अपूर्णता शुद्ध और अशुद्धता है, उसे वह जानना यह प्रयोजनवान है। उसे वह उस प्रकार से वहाँ जानना वह उचित है। समझ में आया ?

इस ग्यारहवीं गाथा में भी बहुत विरोध (है), प्रत्येक में विरोध है। यह प्रश्न किया था, दिल्ली में साहुजी ने... पण्डित लोग उन्हें सिखायें और यह... देखो ! व्यवहार का उपदेश निचली दशावालों को चौथे, पांचवें, छठवेंवालों को ही करना। व्यवहार का ही उपदेश करना। केवलज्ञान हो जाय उसके बाद नहीं - ऐसा कहा है न ? कहा ? परंतु इसप्रकार इसका अर्थ नहीं। आहाहाहा ! इसका अर्थ टीका में देखो ! कहा आयेगा। टीका में आता है देखो ! यह `ववहारदेसिदा' का अर्थ टीका में आता है बाद में। अंत में है। `उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है' टीका के प्रथम पेराग्राफ की अंतिम चौथी पंक्ति। देखो, प्रथम पेराग्राफ की (अन्त से) चौथी पंक्ति। `जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है' संस्कृत टीका है।

व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा नहीं। यह तो भाषा है। परंतु उस समय व्यवहार रागादि की मंदता हो उतना उस समय जिस समय शुद्ध का आश्रय लिया है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ है, फिर भी पूर्णता नहीं। ***इसलिये राग की मंदता एवं शुद्धता में अपूर्णता होती है। उसे उस उस समय, जितनी शुद्धता की अपूर्णता और अशुद्धता का भाव, उस समय उसे जानना प्रयोजनवान (है), दूसरे समय शुद्धि बड़े अशुद्धता घटे उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान (है), तीसरे समय शुद्धि बड़े, अशुद्धि घटे तब उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान (है) सूक्ष्मबातें है बापू ! यह तो...*** आहाहा !

ग्यारह और बारह (गाथा) में बड़ा विरोध होता है, ग्यारहवीं (गाथा में) जो निश्चय कहा, वह निश्चय का आश्रय हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, परंतु पूर्णता हुई नहीं। उसे वर्तमान पर्याय में थोड़ी शुद्धता और अशुद्धता दोनों वर्तती है, उसे जानना यह प्रयोजनवान है। आदर करने योग्य तो त्रिकाली का आदर है। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें है।

यह `ववहारदेसिदा' का अर्थ में उल्टी प्ररूपणा... टीका में अर्थ अमृतचन्द्राचार्य `व्यवहारदेसिजा' का अर्थ क्या ? तब टीका में कहा है कि उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है। `दिखाना एवं उपदेश करना' - ऐसा इसका अर्थ है ही नहीं। आहाहा !

वैसे तो बंध कथा का पाठ आया है पहले, आत्मा में बंध कथा तो विसंवाद उत्पन्न करती है तब (क्या ?) बंध कथा विसंवाद उत्पन्न करती है ? गाथा तो ऐसी है। भाव बंध है... स्वरूप अबंध है। स्वरूप भगवान उसमें जो भाव बंध है वह विसंवाद

अर्थात एक में दूसरे को जोड़ना में बिगाड़ होता है। यह जुड़ने (का) भाव बंध है। आहाहा ! यह बंध कथा अर्थात बंधभाव, विसंवाद उत्पन्न करती है - ऐसा है। बंध कथा क्या विसंवाद उत्पन्न करती है ? पाठ में बंध कथा है। तीसरी गाथा, कथा का अर्थ तो वाणी का उसका जो वाच्य है - बंधभाव वह विसंवाद, विसंवाद उत्पन्न करती है।

इस प्रकार यहाँ `ववहारदेसिदा' व्यवहार का उपदेश, यह तो शब्द है। उसका वाच्य कि जो उस समय शुद्धता कम और अशुद्धता (है) इसका ज्ञान करना, उसका नाम व्यवहार दिखाया, अर्थात व्यवहार देखा, अर्थात जाना यह (जाना हुआ) प्रयोजनवान है। आहाहा ! कहो समझ में आता है कि नहीं छोटाभाई ! - ऐसा कहीं मिले - ऐसा नहीं कलकत्ता में कि सभी जगह मोहनलालजी कहते हैं। यह कहीं नहीं - ऐसा है ही नहीं, बहुत बदला बदली हो गई बदला बदली हो गई। इन लोगों को बिचारों को पता नहीं और यह वस्तुस्थिति ऐसी है।

कि शुद्धनय जानने योग्य है, पुनश्च जो जीव अपरमभाव अर्थात श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र में पूर्णभाव हुआ नहीं - पूर्णभाव हुआ नहीं। वह पूर्णभाव तक पहुंच सके नहीं। साधक अवस्था में हैं, स्थित हैं उन्हें व्यवहार आता है, उसे जानना, यह प्रयोजनवान है।

`व्यवहारदेसिदा' का अर्थ यह है। आहाहा ! दिल्ली में यह प्रश्न किया था, साहुजी ने... लोग बाहर में बिचारे सभी ने... यह प्रश्न लाये थे। स्थानकवासियों के लिये, देरावासी तो लाते ही हैं वह, दिगम्बर भी यह गाथा बताते है... देखो व्यवहार का उपदेश करना... व्यवहार का उपदेश यहाँ करना (कहा) उपदेश की व्याख्या (का प्रयोजन) नहीं प्रभु ! यह तो शब्द है, इसका वाच्य तो टीका में कहा है उस समय जितना राग होता उतना उसे जानना प्रयोजनवान है। आहाहा ! समझ में आया ? अब इसमें (समझने की) कहाँ फुरसत होती है। इसमें डॉक्टर को इन्जेक्सन देने में सभी, (समय जाता) परंतु यह इन्जेक्सन अलग जाति का है। आहाहा !

कहते हैं प्रभु ! एकबार सुनो कि आत्मा जो है वस्तु प्रभु, यह अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रियज्ञान की पूर्ण मूर्ति है। प्रभु ! इसका जिसने आश्रय लिया, इसका अवलम्बन लिया उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। उसके आश्रय से दर्शन हो, उसके आश्रय से ज्ञान हो, उसके आश्रय से चारित्र होता (है) वह तो निश्चय। परंतु जिसे ज्ञान चारित्र श्रद्धादि अभी पूर्ण हुये नहीं, केवलज्ञान की स्थिति हुई नहीं, परमअवगाढ़ समकित नहीं, परम केवलज्ञान नहीं, परम यथाख्यात स्थिर चारित्र नहीं। ऐसे जीव को निचली दशा में जो राग की मंदता और शुद्धता की अपूर्णता दिखती है, उसे जानना यह व्यवहार से प्रयोजनवान कहा है। समझ में आया ?

बहुत से तो इसका अर्थ - ऐसा करते हैं। पंडित साधु, गृहस्थ हो तो वह भी, बहुत बड़ा लेख लिखते हैं। कोई मोतीचन्द्र नाम का कोई है वहाँ फलटन का है कोई ! (श्रोता :- यह तो निमित्त को ही मानता है) है न बेरिस्टर है उस दिन, यह विरोध किया था, फलटन गये तब, व्याख्यान सुनने के बाद (कहते) व्यवहार से इसप्रकार...

अरे ! प्रभु ! भाई सुनो बापा ! व्यवहार उसे कहें कि जिसने स्व चैतन्य प्रभु उसका आश्रय लेकर जिसे निश्चय सत्य दर्शन ज्ञान चारित्र हुआ है उस जीव को पूर्णदशा नहीं, इसलिये वहाँ व्यवहार... राग की मंदता का (भाव) आये बिना रहता नहीं। यह राग की मंदता को जानना यह व्यवहारदेसिदाः का अर्थ है। यह इसे जानना यह प्रयोजनवान है, यह व्यवहार दिखाने के लिये प्रयोजनवान है। आहाहा !

अरे ! कहाँ जगत रुक गया है न, रुक गया (है), अभी तो शास्त्र के अर्थ करने में विपरीतता। अंतर की दृष्टि तो है नहीं। आहाहा ! यह कहें `ववहारेदसिदा' व्यवहार दिखाया फिर अर्थ - ऐसा है और देखो ! देसिदा अर्थात उपदेश करने योग्य इसप्रकार, परंतु इसकी व्याख्या ? जिस धर्मी को अंतर स्वभाव के आश्रय से धर्म प्रगटा है, सत्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, परंतु जिसकी दशा पूर्ण हुई नहीं, इसलिये उसे उस समय की राग की मंदता का सहचररूप व्यवहार आये बिना रहता नहीं। इसे जाना हुआ... निश्चय है वह आदरणीय है और व्यवहार है वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, जानने लायक है।

निश्चय आदरणीय है एवं व्यवहार आदरणीय है, तब तो दो भाग किये क्यों ? आहा...हा ! दो नय और दोनों का विषय (एक) क्यों हुआ ? जो दोनों आदरणीय हों दोनों विषय (अ) भिन्न (न) होना चाहिए। समझ में आया ? आहा ! इसका अर्थ यह हुआ कि एक निश्चय जो स्वभाव के आश्रय है, वह आश्रय आदरने लायक है और जितनी राग की मंदता का भाव, पूर्ण वीतराग हुआ नहीं, अतः आये बिना रहता नहीं। परंतु उस समय उसे यह जानना कि यह है, बस इतना, आदरणीय है और इससे लाभ है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। आहा ! समझ में आया ? आहाहा !

अब गाथा का अर्थ करने में बड़ी भूल, अब इसलिए जायें कहाँ ? आहाहा ! - ऐसा अर्थ करते न... वह विचारे साधारण व्यक्ति चलो व्रत लो एवं प्रतिमा ले लो। परंतु तुम्हारी प्रतिमा अंक बिना के शून्य है। (प्रथम) सम्यग्दर्शन ही नहीं जहाँ, वहाँ प्रतिमा कहाँ से आ गई ? महाव्रत ले लो डरो नहीं - ऐसा एक व्यक्ति कहते थे, परंतु क्या कहते यह ? बाहर से ले लेना परंतु बाहर से तो अनंत बार लिया है, नौवीं ग्रेवेयक गया अनंतबार, अभी तो ऐसा महाव्रत कहाँ है ? इससे तो ऊँचे

भाव तब थे, अब तो कहाँ ? यह तो उसके लिये किया गया चौका (लगता) और आहार लेते है सभी। निर्दोष मिलना मुश्किल है। वह चौका लगाये और यह लें, व्यवहार ही नहीं अभी तो (पहले जैसा)।

श्रोता :- रात के समय... नींद कितने घण्टे आती होगी ?

उत्तर :- परंतु यह तो एक तरफ रहा, मुनि को नींद ही पौन सेकेण्ड के अंदर की होती, अभी तो (यह) छह-छह सात घण्टे सोते हैं, तब द्रव्यलिंग का भी पता नहीं, भाव (लिंग) तो है ही कहाँ ? निश्चय सम्यग्दर्शन का... यह व्यक्तियों के लिये नहीं प्रभु हाँ ! यह तो वस्तु की स्थिति यह है। व्यक्ति की बात नहीं, उसकी जिम्मेदारी तो उसकी है न ? (अरे !) यह भगवान है भाई ! भूला है परंतु भगवान है। इस भूल से इसे दुःख होगा, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा ! व्यवहार करने से निश्चय होगा, ऐसी मान्यता तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व है यह महा संसार है।

यहाँ तो मुनि को जो पंचमहाव्रत का विकल्प उठे, उसे भी जगपंथ और संसार कहा। आहाहाहाहा ! तब व्यवहार की क्रिया करते... करते निश्चय हो, यह तो बड़ा जगपंथ - मिथ्यात्व है। आहाहा ! मिथ्यात्व यह जगपंथ है और मिथ्यात्व जाने के बाद राग रहे वह भी जगपंथ है। (श्रोता :- राग का फल ही भव है) आहाहा ! तो फिर अभी शुभ करें, शुभ करते करते आगे जा सकते है (उससे) शुद्ध होगा। यह पहला सोपान है, अशुभ टालकर शुभ (में) आना फिर शुभ टालना यह सीढ़ी है - ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा !

यह तो सम्यग्दर्शन होने के बाद, अनुभव होने के बाद... उसे पहले अशुभ छूटे और शुभ में आये और फिर शुभ छोड कर शुद्ध में आये ऐसी बात है। परंतु अभी यहाँ पता न चले, व्यवहार श्रद्धा का पता नहीं मिले और अशुभ पहले टले फिर शुभ आये। उसे तो सभी अशुभ ही है उसे तो। मिथ्यात्व है यही बड़ा अशुभ है। आहाहा ! बहुत कठिन बातें !

इस शब्दार्थ में - ऐसा भाव है। व्यवहारदेसिदा कहा है न ? अर्थात उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार दिखाया है। बस ! उस समय पूर्ण चारित्र नहीं और अपूर्ण चारित्र में है, दर्शन-ज्ञान हुआ, परंतु चारित्र पूर्ण हुआ नहीं ऐसे साधक जीव को है न ? साधक अवस्था में ही, सिद्ध हो गये, केवली हो गए उन्हें कुछ नहीं, मिथ्यादृष्टि को कुछ नहीं।

क्या कहा ? सर्वज्ञ हुये उनकी यहाँ चर्चा नहीं, उसीप्रकार मिथ्यादृष्टि है उनकी भी यहाँ चर्चा नहीं। यह तो साधक अवस्था में... आहाहा ! जिसने यह आत्मा आनंदस्वरूप का साधन किया है, अंतर के आश्रय से जिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंशरूप प्रगटा है।

परंतु साधक अवस्था है वहाँ बाधक अवस्था अभी विद्यमान है। साधक वहाँ तक कहें उसे कि (जिसे) बाधक अवस्था है। यह बाधक अवस्था है उसे व्यवहार कहकर जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है। आहाहा ! अरेरे ! क्या हुआ। भगवान का विरह हुआ, त्रिलोकनाथ यहां रहे नहीं, केवलज्ञान की उत्पत्ती रही नहीं, अवधि-मनःपर्यय से कुछ प्रत्यक्षज्ञान हो सके ऐसी वस्तु रहीं नहीं। आहाहा ! और सभी (ओर) विरोध उठा (है)।

अर्थात कहते हैं... श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के पूर्णभाव को नहीं पहुंच सका इसप्रकार, मूल तो चारित्र की पूर्णदशा को पाया नहीं और ज्ञान की पूर्णदशा को पाया नहीं इसप्रकार। परंतु श्रद्धा तो श्रद्धा हुई है। समझ में आया ? श्रद्धा भी परमावगाढ़ हुई नहीं, पूर्ण केवलज्ञान हुआ नहीं, चारित्र यथाख्यात हुआ नहीं, ऐसे पूर्ण को नहीं पहुंच सका, साधक वर्तमान बाधक अवस्था में वर्तता है अर्थात कि बाधक अवस्था का नाश किया है मिथ्यात्व का, परंतु दूसरी बाधक अवस्था राग की अभी बाकी है... आहाहा ! समझ में आया ?

साधक हुआ है, स्वरूप शुद्धचैतन्य है उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ है, साधक है, उसे पूर्ण दशा नहीं, ऐसी अवस्था में, व्यवहार द्वारा अर्थात व्यवहार उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसे व्यवहार आता है, इसलिये जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! अब ऐसे सभी अर्थ करना... यह लोग - ऐसा कहते हैं कि सोनगढियों ने अर्थ पलटा है, सभी ख्याल है न (श्रोता :- यह तो - ऐसा ही कहें न !)

ऐसा ही कहते हैं क्या हो ? आहाहा ! यहाँ तो प्रभु ! बारहवीं गाथा में भगवान कुंदकुंदाचार्य का आशय यह है कि... उसका स्पष्टीकरण टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने स्पष्टीकरण किया है कि भाई ववहारदेसिदा का अर्थ क्या ? कि उस समय राग की मंदता साधक जीव को वर्तती है, उसे जानना वह प्रयोजनवान है - ऐसा व्यवहारदेसिदा का अर्थ यह है, आहाहा ! आयेगी टीका... यह तो शब्दार्थ में (स्पष्टीकरण थोड़ा हुआ)

- प्रमाण वचन गुरुदेव !